देश-विदेश

पुस्तिका-12

किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, विश्व व्यापार संगठन और तीन कृषि कानून

किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, विश्व व्यापार संगठन और तीन कृषि कानून

देश–विदेश

पुस्तिका-12

देश-विदेश पुस्तिका-12

जुलाई - 2021

किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, विश्व व्यापार संगठन और तीन कृषि कानून

सम्पादक

उमा रमण

सहयोग राशि

15 रुपये

सम्पर्क सूत्र

देश-विदेश, 502/10, एस-1, साँई कॉम्पलेक्स,

डी ब्लॉक, गली नं. - 1, अशोक नगर, शाहदरा,

दिल्ली - 110093

वेबसाइट

www.deshvidesh.net

मुद्रक

प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स,

ए-21, झिलमिल इण्डस्ट्रियल एरिया

जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095

उमा रमण द्वारा एस-1, साँई कॉम्पलेक्स, 502/10 अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली- 110093 से प्रकाशित

तीन कृषि कानूनों (2020) को रद्द करवाने की माँग को लेकर किसान संगठनों का दिल्ली की सीमाओं के चारों ओर चल रहे ऐतिहासिक आन्दोलन को अब छः महीने से भी अधिक समय हो चुका है। इस बीच आन्दोलन को न केवल देशभर के किसानों और अन्य मेहनतकशों और समाज के विभिन्न तबकों का सहयोग मिला है, बल्कि दुनियाभर के न्यायपसन्द लोगों का भरपूर समर्थन भी हासिल हुआ है।

इसी सिलसिले में, इस आन्दोलन की अगुआई करनेवाले साझा मंच-- 'संयुक्त किसान मोर्चा' के संयोजक, किसान नेता डॉ. दर्शन पाल को 15 मार्च 2021 को संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में वक्तव्य देने का मौका मिला। उन्होंने तीन कृषि कानूनों, एमएसपी और किसान आन्दोलन पर किसानों का पक्ष रखते हुए संयुक्त राष्ट्र से अपील की कि वह भारत सरकार को "किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र 2018" का पालन करने के लिए बाध्य करे।

संयुक्त राष्ट्र (यूएन) मानवाधिकार परिषद में दिये गये वक्तव्य में डॉ दर्शन पाल ने कहा--

> "मेरा नाम दर्शन पाल है और मैं भारत में एक किसान हूँ। मैं आभारी हूँ कि संयुक्त राष्ट्र आज हमको सुन रहा है। हम भारतीय किसान अपने देश से प्रेम करते हैं और हमको उस पर गर्व है। हम संयुक्त राष्ट्र पर भी गर्व का अनुभव करते हैं जिसने किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र जारी किया, ताकि दुनिया भर के छोटे किसानों के हितों की रक्षा हो सके।
>
> मेरे देश ने भी इस घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किया है ताकि किसानों के हित सुरक्षित रहे। किसानों की फसल के उचित मूल्य निर्धारण के द्वारा, उनकी सम्मानजनक आजीविका सुनिश्चित करना भी इसका एक हिस्सा था जिसे न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) कहते हैं।
>
> हमारे पास एक अच्छा बाजार तंत्र था, जिसका प्रयोग ग्रामीण आधारभूत ढाँचे के विकास में होता था और साथ ही हम अपनी समस्या को लेकर अदालत में भी जा सकते थे।
>
> नये कृषि कानूनों में ये सब हमसे छीना जा रहा है।

ये कानून, हमारी आय दोगुनी नहीं करने वाले हैं। जिन राज्यों में पहले ऐसी ही नीति लागू की गयी है, उन्होंने किसानों को गरीबी की चपेट में आते देखा है। वे अपनी जमीन गवाँ कर, मजदूरी करने को मजबूर हैं।

हमको सुधार तो चाहिए, पर ऐसे सुधार नहीं चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा पारित 'किसानों और ग्रामीण इलाके के अन्य मेहनतकशों के अधिकारों का घोषणापत्र', तमाम देशों की सरकारों को बाध्य करता है कि नयी योजना-नीति लागू करने से पहले, वे किसानों से सलाह लें।

हम संयुक्त राष्ट्र से विनम्र निवेदन करना चाहते हैं कि हमारी सरकार से उक्त घोषणापत्र का सम्मान करने को कहें-- कि सरकार यह नया कानून वापस ले, किसानों से बात करे और फिर किसान के हित में नीतियाँ बनाकर लागू करे। साथ ही ऐसी नीतियाँ बनाये, जो कि पर्यावरण के भी हित में हों, जैसा कि किसानों के लिए घोषणापत्र में उल्लिखित है।"

'किसानों और ग्रामीण इलाके के अन्य मेहनतकशों के अधिकारों का घोषणापत्र 2018' क्या है? इस घोषणापत्र और तीन नये कृषि कानूनों में क्या सम्बन्ध है? इस घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने वाली हमारी सरकार ने क्या उसके प्रति अपनी वचनबद्धता का अनुपालन किया है? ये तीन नये कृषि कानून किसानों के अधिकारों की घोषणा के अनुरूप हैं या उसकी अवहेलना करने वाले हैं? क्या सरकार ने इन कानूनों को बनाने की प्रक्रिया में हमारे देश के संविधान में निहित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों और मौलिक अधिकारों का ध्यान रखा है? इन कानूनों के निर्माण की दिशा में डब्ल्यूटीओ के कट्टर शर्तनामों और सरकार पर पड़ने वाले उसके दबावों की क्या भूमिका रही है, जिसका मकसद भारतीय कृषि को विश्व व्यापार के लिए मुक्त क्षेत्र बनाना है? इस पुस्तिका में इन्हीं मुद्दों का तथ्यपूर्ण विश्लेषण किया गया है।

किसानों और ग्रामीण इलाके के अन्य मेहनतकशों के अधिकारों का घोषणापत्र

17 दिसम्बर 2018 को संयुक्त राष्ट्र महासभा की तीसरी समिति ने किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा के पक्ष में मतदान किया।

इस घोषणा का उद्देश्य किसानों, मछुआरों, खानाबदोश लोगों, खेत मजदूरों और मूलनिवासी लोगों सहित समस्त ग्रामीण आबादी के अधिकारों की बेहतर हिफाजत करना और जीवन के हालात में सुधार करना है, साथ ही खाद्य सम्प्रभुता, जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई और जैव विविधता के संरक्षण को मजबूत करना है। संयुक्त राष्ट्र घोषणा की पुष्टि पारिवारिक खेती और किसानी खेती को बढ़ावा देने की दिशा में अन्तरराष्ट्रीय समुदाय के प्रयासों में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

यह घोषणा दुनिया की ग्रामीण आबादी की गरिमा, वैश्विक खाद्य उत्पादन में उनके योगदान तथा जमीन, पानी और प्रकृति के साथ उनके विशेष सम्बन्ध तथा दुनिया के कई इलाकों में उनकी बेदखली, काम करने की खतरनाक परिस्थिति और राजनीतिक दमन की कड़वी सच्चाइयों को स्वीकार करती है। यह घोषणा संयुक्त राष्ट्र के अन्य समझौतों द्वारा संरक्षित मानव अधिकारों की पुनर्पुष्टि करती है तथा भूमि और प्राकृतिक संसाधनों, बीज, जैव विविधता और खाद्य सम्प्रभुता से सम्बन्धित व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकारों के लिए नये मानदण्ड निर्धारित करती है।

संयुक्त राष्ट्र घोषणा को स्वीकृति दिलाने की प्रक्रिया और दुनियाभर के जन संगठनों के प्रयास

इस घोषणा को लागू करवाने के लिए दुनियाभर के मानवाधिकार संगठनों, किसान संगठनों, महिला अधिकार संगठनों, मूलनिवासियों के संगठनों, बोलिवियाई राजनयिक, वकीलों और न्यायविदों, इण्डोनेशिया, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, सेनेगल और अर्जेंटीना के किसान नेताओं तथा कई देशों के मछुआरों और ग्रामीण मजदूरों के संगठनों ने सत्रह सालों तक संघर्ष किया। इन तमाम संगठनों और व्यक्तियों ने एक साथ मिलकर एक नये प्रकार की जन-कूटनीति और अन्तरराष्ट्रीय कानून के निर्माण की एक नवीन प्रक्रिया को अमली जामा पहनाया।

ला वाया कैंपसीना (एलवीसी) ने पहली बार संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में "विकास के अधिकार" पर बहस में किसानों के अधिकारों की वकालत की। एलवीसी एक अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन है, जिसमें दुनिया भर के लाखों किसान, छोटे और मध्यम किसान, भूमिहीन लोग, ग्रामीण महिलाएँ और नौजवान, मूलनिवासी जनता, प्रवासी और खेतिहर मजदूर शामिल हैं। अफ्रीका, एशिया, यूरोप और अमरीका के 81 देशों के 182 स्थानीय और राष्ट्रीय संगठन इससे सम्बद्ध हैं और कुल मिलाकर यह लगभग 20 करोड़ किसानों

का प्रतिनिधित्व करता है। एलवीसी ने 1996 में टलाक्सकला (मैक्सिको) में आयोजित अपने दूसरे अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में ही अपने उद्देश्यों को अन्तरराष्ट्रीय मंच पर ले जाने का फैसला किया। हालाँकि एलवीसी ने ऐतिहासिक रूप से अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ), विश्व बैंक (डब्ल्यूबी) और विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) से दूरी बनाये रखी, जिनको वह दुनियाभर के किसानों और मेहनतकशों के दुश्मन के रूप में देखता है, लेकिन इसने लम्बे समय तक संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न निकायों और एजेंसियों के साथ बातचीत में हिस्सेदारी की, जिनमें संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) और विश्व खाद्य सुरक्षा पर संयुक्त राष्ट्र समिति (सीएफएस) के साथ वार्ता करने पर उसका विशेष जोर रहा।

ला वाया कैंपसीना के प्रतिनिधि डिएगो मोंटाना ने इस घोषणापत्र की स्वीकृति के ऐतिहासिक महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा कि "इस ऐतिहासिक क्षण में, जब हमारे जीवन की कीमत पर वित्तीय पूँजी और बहुराष्ट्रीय निगम भोजन पर एकाधिकार कायम करने तथा भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा जमाने के लिए अपना हमला तेज कर रहे हैं, संयुक्त राष्ट्र महासभा की तीसरी समिति में किसान अधिकारों की घोषणा को स्वीकार किया जाना, न केवल किसानों के लिए, बल्कि पूरे विश्व की जनता के लिए एक रणनीतिक जीत है। हम अधिकारों और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष और एकता के इस लम्बे रास्ते पर चलते रहेंगे, क्योंकि हमारा यह मानना है कि पूर्ण लोकतंत्र केवल कृषि सुधार, भूमि के सामाजिक प्रयोजन और किसानों के अधिकारों का पूर्ण उपभोग के माध्यम से ही सम्भव है।"

संयुक्त राष्ट्र घोषणा की समिति द्वारा स्वीकृति के दौरान काफी विवाद और बहस हुई, लेकिन इसे अफ्रीका, एशिया और लातिन अमरीकी देशों से लगातार समर्थन हासिल हुआ। कुछ नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ यूरोप और अन्य क्षेत्रों से आयीं और खास तौर पर अमरीकी प्रतिनिधिमण्डल ने तो इसके दस्तावेज को पूरी तरह खारिज कर दिया। उनको संयुक्त राष्ट्र घोषणा से बहुत सारी परेशानियाँ थीं, जैसे-- यह घोषणा पहले से मौजूद अधिकारों का विस्तार करने की माँग करती है, किसानों के मानवाधिकारों को अन्य समूहों के ऊपर ला देती है, इत्यादि। उनको घोषणा में निर्धारित किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों के सामूहिक अधिकारों पर भी एतराज था। यूरोपीय देश अपनी प्रतिक्रिया के मामले में विभाजित थे।

भारत सहित 119 देशों ने इस प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया, 7 देश इसके विरुद्ध थे (ऑस्ट्रेलिया, हंगरी, इजराइल, न्यूजीलैण्ड, स्वीडन, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य

अमरीका) जबकि 49 देश तटस्थ रहे।

"यह घोषणा मौजूदा अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणाओं की अगली कड़ी" --संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्यसभा का वक्तव्य

किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों की घोषणा करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में घोषित सिद्धान्तों की याद दिलायी, जिनमें मानव परिवार के सभी सदस्यों की अन्तर्निहित गरिमा और कल्याण तथा समान और अपरिहार्य अधिकारों को दुनिया में स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति की नींव के रूप में स्वीकार किया गया है। साथ ही इस घोषणा के सन्दर्भ में सामान्य सभा ने अपने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के सिद्धान्तों, नस्ली भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन पर अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय करार, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए अन्तरराष्ट्रीय करार, महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन पर कन्वेंशन, बाल अधिकारों पर कन्वेंशन, सभी प्रवासी कामगारों के अधिकारों और उनके परिवारों के सदस्यों के संरक्षण पर अन्तरराष्ट्रीय कन्वेंशन, अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रासंगिक सम्मेलन और अन्य प्रासंगिक अन्तरराष्ट्रीय दस्तावेज जिन्हें सार्वभौमिक या क्षेत्रीय स्तर पर अपनाया गया है, उसकी याद दिलायी।

मूलनिवासी लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा और विकास के अधिकार के बारे में घोषणा की भी पुनः पुष्टि की और बताया कि विकास का अधिकार एक अपरिहार्य मानव अधिकार है जिसके जरिये प्रत्येक मानव, व्यक्ति और सभी लोगों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास में भाग लेने, योगदान करने और आनन्द लेने का अधिकार है, जिसके जरिये सभी मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता को पूरी तरह से महसूस किया जा सकता है।

सामान्य सभा ने किसान और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोग जिस भूमि, जल और प्रकृति पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर हैं, उसके साथ उन लोगों के विशेष सम्बन्ध और परस्पर क्रिया को स्वीकार किया तथा दुनिया के सभी इलाकों के किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों द्वारा अतीत, वर्तमान और भविष्य में जैव विविधता के विकास तथा संरक्षण और सुधार में उनके योगदान को, जो दुनिया भर में पर्याप्त खाद्य और कृषि उत्पादन को आधार प्रदान करता है, तथा खाद्य सुरक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने में उनके योगदान को, जो टिकाऊ विकास के लिए

एजेण्डा 2030 सहित, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सहमत तमाम विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने का भी आधार है, उसे मान्यता प्रदान किया।

सामान्य सभा ने इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि किसान और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोग गरीबी, भुखमरी और कुपोषण से तथा पर्यावरणीय विनाश और जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाली मुसीबतों से बुरी तरह पीड़ित हैं। आगे उसने दुनिया भर में अधिकांश किसानों के बूढ़े होते जाने और युवाओं द्वारा शहरी क्षेत्रों में पलायन करने के बारे में भी चिन्ता व्यक्त की जो कृषि के प्रोत्साहन में कमी और ग्रामीण जीवन में बढ़ते अभाव के कारण खेती से अपना मुँह मोड़ रहे हैं। उसने ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विविधीकरण में बेहतरी लाने और विशेषकर ग्रामीण युवाओं के लिए गैर-कृषि रोजगारों को पैदा करने की आवश्यकता को स्वीकार किया।

सामान्य सभा ने किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों की लगातार बड़ी संख्या में हर साल जबरन बेदखली या विस्थापन तथा कई देशों में भारी संख्या में किसानों द्वारा आत्महत्या किये जाने की घटनाओं पर भी चिन्ता प्रकट की।

सामान्य सभा ने इस बात पर जोर दिया कि किसान महिलाएँ और अन्य ग्रामीण महिलाएँ अपने परिवारों की आर्थिक स्थिति को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, तथा ग्रामीण और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान देती हैं, जिसमें अर्थव्यवस्था के ऐसे क्षेत्रों में उनके द्वारा किये जाने वाले काम भी शामिल हैं जिनका कोई आर्थिक लाभ उनको नहीं मिलता, लेकिन जमीन की पट्टेदारी और स्वामित्व, भूमि के समान उपयोग, उत्पादन के संसाधन, वित्तीय सुविधाओं, सूचना, रोजगार या सामाजिक संरक्षण से अक्सर उनको वंचित रखा जाता है, और अक्सर उनको हिंसा और भेदभाव के नाना रूपों और अभिव्यक्तियों का शिकार बनाया जाता है।

सामान्य सभा ने ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों के अधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने के महत्व पर भी जोर दिया, जिसमें प्रासंगिक मानवाधिकार दायित्वों के अनुरूप गरीबी, भुखमरी और कुपोषण का उन्मूलन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य को बढ़ावा देना, रसायनों और कचरे के सम्पर्क से सुरक्षा और बाल श्रम का उन्मूलन करना शामिल है।

उसने इस बात पर जोर दिया कि ऐसे कई नकारात्मक कारक हैं जो किसानों और छोटे पैमाने के मछुआरे और मछली पालन श्रमिक, पशुपालक, वनवासी श्रमिक और अन्य स्थानीय समुदाय सहित ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले तमाम लोगों की आवाज सुने जाने, उनके मानवाधिकारों और दसियों अन्य अधिकारों की रक्षा करने और जिन प्राकृतिक

संसाधनों पर वे निर्भर हैं उनके स्थायी उपयोग को सुरक्षित करने के रास्ते में मुसीबतें खड़ी करती हैं।

सामान्य सभा ने यह स्वीकार किया कि भूमि, जल, बीज और अन्य प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच, ग्रामीण लोगों के लिए दिनोंदिन बढ़ती एक चुनौती है, और उसने उत्पादक संसाधनों तक पहुँच में सुधार लाने और समुचित ग्रामीण विकास में निवेश के महत्व पर जोर दिया।

सामान्य सभा ने इस बात पर अपनी सहमति जतायी कि कृषि उत्पादन की टिकाऊ प्रथाओं को बढ़ावा देने और उन्हें अपनाने के लिए किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के प्रयासों का समर्थन किया जाना चाहिए, जो उस प्रकृति को सम्बल प्रदान करने वाली हों और उसके साथ सामंजस्य स्थापित करती हों, जिसका उल्लेख कई देशों और क्षेत्रों में धरती माता के रूप में किया जाता है, जिन प्रथाओं में प्राकृतिक प्रक्रियाओं और चक्रों के माध्यम से पारिस्थितिक तंत्र को अनुकूलित और पुनर्जीवित करने के लिए जैविक और प्राकृतिक क्षमता का सम्मान करना शामिल है।

सामान्य सभा ने बताया कि दुनिया के कई हिस्सों में ऐसी खतरनाक और शोषणकारी स्थितियाँ मौजूद हैं, जिनके अधीन कई किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को काम करना पड़ता है, अक्सर उनको कार्य-स्थल पर अपने मौलिक अधिकारों का उपयोग करने से वंचित किया जाता है तथा जीने लायक मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा का अभाव होता है। उसने इस बात पर भी चिन्ता जाहिर की कि भूमि और प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े लोगों के मानवाधिकारों को प्रोत्साहन देने और उनकी रक्षा करने के मुद्दों पर काम करने वाले व्यक्तियों, समूहों और संस्थानों को भयभीत किये जाने के विभिन्न तौर-तरीकों का सामना करना पड़ता है और उनके सामने शारीरिक सुरक्षा का खतरा मौजूद होता है। साथ ही, किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों को अक्सर अदालतों, पुलिस अधिकारियों, अभियोजकों और वकीलों तक पहुँच बनाने में इस हद तक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कि वे हिंसा, अपमान और शोषण के मामलों से तत्काल निपटने या सुरक्षा पाने में असमर्थ होते हैं।

सामान्य सभा ने खाद्य उत्पादों की सट्टेबाजी, खाद्य वितरण प्रणालियों का बढ़ता केन्द्रीकरण और असन्तुलित वितरण तथा कीमतों को लेकर असमान शक्ति-सम्बन्धों के बारे में चिन्ता व्यक्त की, जो मानव अधिकारों के उपयोग को क्षति पहुँचाते हैं।

इस बात की पुनः पुष्टि की गयी कि विकास का अधिकार एक अपरिहार्य मानव

अधिकार है जिसके आधार पर प्रत्येक इनसान और सभी लोग आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास में भाग लेने, योगदान करने और आनन्द लेने के हकदार हैं, जिसमें सभी मानवाधिकारों और मौलिक अधिकारों के हकदार हो सकते हैं और उसे पूरी तरह से हासिल कर सकते हैं। उसने मानव अधिकारों पर दोनों अन्तरराष्ट्रीय अनुबन्धों के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत, प्राकृतिक सम्पदा और संसाधनों पर सभी लोगों के पूरा और मुकम्मल सम्प्रभुता का प्रयोग करने के अधिकार की याद दिलायी। साथ ही यह भी स्वीकार किया कि खाद्य सम्प्रभुता की अवधारणा का उपयोग कई राज्यों और क्षेत्रों में किया गया है ताकि वे अपने भोजन और कृषि प्रणालियों तथा स्वस्थ और सांस्कृतिक रूप से समुचित भोजन के अधिकार परिभाषित करने के अधिकार को सुनिश्चित कर सकें जिनका उत्पादन मानव अधिकारों का सम्मान करने वाले, पारिस्थितिक रूप से मजबूत और स्थायी तरीकों के माध्यम से किया जाता हो।

सामान्य सभा यह स्वीकार करती है कि जिस व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के प्रति और जिस समुदाय से वह सम्बन्धित है उसके प्रति कर्तव्यों का पालन करना होता है, उनकी यह जिम्मेदारी है कि वर्तमान घोषणा और राष्ट्रीय कानून में मान्यता प्राप्त अधिकारों के प्रोत्साहन और पालन के लिए प्रयास करें। साथ ही, उसने संस्कृतियों की विविधता का सम्मान करने और सहिष्णुता, संवाद और सहयोग को बढ़ावा देने के महत्व की भी पुनः पुष्टि की।

उसने श्रम संरक्षण और सम्मानजनक काम के बारे में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के सम्मेलनों और सिफारिशों के विस्तृत निकाय की याद दिलायी।

उसने कृषि सुधार और ग्रामीण विकास पर विश्व सम्मेलन, और उसमें स्वीकृत किसानों के चार्टर के परिणाम को याद किया, जिसमें कृषि सुधार और ग्रामीण विकास के लिए उपयुक्त राष्ट्रीय रणनीतियों के निर्माण और समग्र राष्ट्रीय विकास रणनीतियों के साथ उनके एकीकरण की आवश्यकता पर जोर दिया गया था।

सामान्य सभा ने कहा कि वर्तमान घोषणापत्र और प्रासंगिक अन्तरराष्ट्रीय समझौते, मानवाधिकारों की सुरक्षा को बढ़ाने की दृष्टि से परस्पर सहायक होंगे। उसने अन्तरराष्ट्रीय सहयोग और एकजुटता के निरन्तर बढ़ते प्रयास द्वारा मानव अधिकारों के प्रयासों में भरपूर प्रगति हासिल करने की दृष्टि से अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की प्रतिबद्धता में नये कदम बढ़ाने के प्रति अपने संकल्प को दुहराया।

ऊपर हमने संयुक्त राष्ट्र घोषणा के समय दिये गये वक्तव्य की चर्चा की।

इस घोषणा में कुल 28 अनुच्छेद हैं। स्थानाभाव के चलते उनके बारे में यहाँ विस्तार से देना सम्भव नहीं है। आगे हम इन अनुच्छेदों में से कुछ की तुलना भारत के मौजूदा तीनों कृषि कानूनों से करेंगे और देखेंगे कि ये कानून न केवल भारत की जनता के खिलाफ हैं, बल्कि संयुक्त राष्ट्र घोषणा के बिलकुल विरोध में भी खड़े हैं।

क्या तीन कृषि कानून संयुक्त राष्ट्र घोषणा के अनुरूप है?

'किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र घोषणा' सितम्बर 2018 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद द्वारा स्वीकार किया गया था। एक महीने बाद, अक्टूबर 2018 में भारत मानवाधिकार परिषद का सदस्य बन गया। दिसम्बर 2018 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में उस घोषणा पर मतदान में भारत ने उसके पक्ष में मत देकर उसका समर्थन किया और उस पर हस्ताक्षर किया था। इस तरह भारत सरकार वचनबद्ध है कि वह किसानों और ग्रामीण क्षेत्र के मेहनतकशों के अधिकारों की हिफाजत करने वाले वैधानिक और प्रशासनिक कदम उठाये। लेकिन सरकार ने इस घोषणा पर हस्ताक्षर करने के दो साल बाद ही देश में तीन कृषि कानून बनाये, पहले उनको अध्यादेश के रूप में लागू किया और फिर आनन-फानन में संसद के दोनों सदनों से पास करवा कर उसे कानून का रूप दे दिया। इन तीन कृषि कानूनों को देखने से साफ जाहिर होता है कि भारत सरकार ने इनको बनाने के दौरान संयुक्त राष्ट्र घोषणा की मूल भावना का पालन नहीं किया है, जिसमें किसानों के कुछ महत्वपूर्ण और न्यायसंगत अधिकारों की पुष्टि की गयी है।

संयुक्त राष्ट्र घोषणा के कुछ अनुच्छेदों की इन तीन कृषि कानूनों से तुलना करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकार उक्त घोषणा के प्रति अपनी वचनबद्धता निभाने से साफ मुकर गयी है।

❖ यूएन घोषणा के अनुच्छेद 2 (3) में किसानों और उनके प्रतिनिधि संस्थाओं को बातचीत में शामिल करके उनकी सहमति से निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में बताया गया है ताकि कानून बनाने में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो सके और इस बात की गारंटी हो सके कि किसानों के हित सुरक्षित हों। अनुच्छेद 2 (3) इस प्रकार है--

"स्वदेशी लोगों के बारे में विशिष्ट कानून की अवहेलना किये बिना, कानून

और नीतियों को अपनाने और लागू करने से पहले, अन्तरराष्ट्रीय समझौतों और अन्य निर्णय लेने की प्रक्रियाएँ जो किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों को प्रभावित कर सकती हैं, कोई भी निर्णय लेने से पहले राज्य अपने प्रतिनिधि संस्थानों के माध्यम से किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों को विश्वास में लेकर उनसे परामर्श करेंगे और उनका सहयोग हासिल करेंगे, जो लोग सरकार के उन निर्णयों से प्रभावित हो सकते हैं, और उनके सुझावों पर अमल करते हुए, विभिन्न पक्षों के बीच मौजूदा शक्ति असन्तुलन को ध्यान में रखेंगे और सम्बन्धित निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में व्यक्तियों और समूहों की सक्रिय, स्वतंत्र, प्रभावी, सार्थक और सचेत भागीदारी सुनिश्चित करेंगे।''

सरकार ने तीन कृषि कानून बनाने की प्रक्रिया में किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों को शामिल करने की तो बात ही क्या, संसद में भी इस पर बहस नहीं चलायी और जल्दीबाजी में इन कानूनों को पास कर दिया। यहाँ तक कि आन्दोलनकारी किसान नेताओं के साथ भी कोई निर्णायक बातचीत नहीं की।

❖ यूएन घोषणा का अनुच्छेद 2 (5) यह सुनिश्चित करने के बारे में बताता है कि निजी उद्यम और कॉर्पोरेट ऐसे तरीके से काम न करें जिससे किसानों के हितों को नुकसान होता हो और जो उनके अधिकारों को कमजोर करते हों--

"राज्य गैर-राज्य निष्पादकों को यह सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेंगे कि वे नियन्त्रित किये जाने की स्थिति में हों, जैसे कि निजी व्यक्ति और संगठन, अन्तरराष्ट्रीय निगम और अन्य व्यावसायिक उद्यम, किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों का सम्मान करेंगे और उन्हें मजबूत बनायेंगे।"

इसके विपरीत तीन नये कृषि कानून, अन्तरराष्ट्रीय निगमों और अन्य व्यावसायिक उद्यमों को किसानों की उपज खरीदने में सरकारी मण्डी समितियों से ज्यादा सहूलियतें देते हैं। उपज खरीद पर मण्डी समितियों के लिए टैक्स का प्रावधान है, जबकि निजी व्यापारियों को टैक्स से मुक्त रखा गया है।

❖ अनुच्छेद 3 यह सुनिश्चित करने पर जोर देता है कि--

"किसान अपने अधिकारों के प्रयोग में किसी भी प्रकार के भेदभाव से मुक्त रहते हुए संयुक्त राष्ट्र के चार्टर, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और अन्य सभी अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार दस्तावेजों द्वारा मान्यता प्राप्त तमाम मानवाधिकारों

और मूलभूत स्वतंत्रताओं का पूरा लाभ उठायें।"

किसानों के शान्तिपूर्ण आन्दोलन के प्रति सरकार का दमनात्मक रवैया घोषणापत्र के इस अनुच्छेद की धज्जियाँ उड़ाने वाला साबित हुआ है।

❖ अनुच्छेद 3 (2) किसानों के विकास के अधिकार के साथ-साथ अपने विकास के अधिकार को हासिल करने की रणनीति तय करने के उनके अधिकार के बारे में बताता है जो इस प्रकार है--

> "किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों को अपने विकास के अधिकार का उपयोग करने के लिए अपनी प्राथमिकताओं और रणनीतियों को निर्धारित करने और विकसित करने का अधिकार है।"

नये कृषि कानून किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों के इन अधिकारों को छीनकर उसे देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हवाले कर देने वाला है।

❖ अनुच्छेद 6 किसानों को मनमानी गिरफ्तारी या नजरबन्दी, यातना या अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या सजा से बचाने की माँग करता है। अनुच्छेद 8 किसानों के अधिकारों का दावा करने और उन्हें शान्तिपूर्ण तरीकों से अभिव्यक्त करने पर जोर देता है।

किसान आन्दोलन का दमन करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों ने पिछले छः महीनों के दौरान वे सभी हथकण्डे अपनाये, जिन पर घोषणापत्र का यह अनुच्छेद विशेष रूप से रोक लगाने की माँग करता है।

❖ अनुच्छेद 10 उन नीतियों और कानूनों को बनाने में किसानों की सक्रिय भागीदारी को रेखांकित करता है जो उनके जीवन, जमीन और आजीविका को प्रभावित कर सकते हैं। अनुच्छेद 10 (2) में कहा गया है--

> "राज्य अपने निर्णय लेने की प्रक्रिया में किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों की प्रत्यक्ष और/या उनके प्रतिनिधि संगठनों के माध्यम से भागीदारी को बढ़ावा देंगे जो उनके जीवन, जमीन और आजीविका को प्रभावित कर सकते हैं; इसमें किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों के मजबूत और स्वतंत्र संगठनों की स्थापना और विकास का सम्मान करना तथा खाद्य सुरक्षा, श्रम और पर्यावरण मानकों की तैयारी और कार्यान्वयन में उनकी भागीदारी को बढ़ावा देना शामिल है जो उन्हें प्रभावित कर सकते हैं।"

सच्चाई यह है कि तीन नये कृषि कानून किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों के जीवन,

जमीन और आजीविका को बुरी तरह प्रभावित करने, खाद्य सुरक्षा को तबाह करने और पर्यावरण ही नहीं, बल्कि सामाजिक ताना-बाना को भी छिन्न-भिन्न करने वाले हैं। इस कानून को बनाने में किसानों के प्रतिनिधियों की कोई भागीदारी नहीं रही है। किसानों और ग्रामीण क्षेत्र के मेहनतकशों की आवाज सुनना और उन पर विचार करना तो दूर, उनके असन्तोष और उनकी आवाज को दबाने और हर कीमत पर इन कानूनों को उन पर थोपने की कोशिशें आज भी जारी हैं।

❖ अनुच्छेद 12 (1) न्याय तक प्रभावी और बिना भेदभाव के पहुँच के किसानों के अधिकार पर विस्तार से प्रकाश डालता है जिसके अनुसार--

> "किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों को अधिकार है कि न्याय तक प्रभावी और बिना भेदभाव के उनकी पहुँच हो, जिसमें विवादों के समाधान के लिए निष्पक्ष प्रक्रियाओं तक पहुँच और उनके मानव अधिकारों के सभी उल्लंघनों के लिए प्रभावी उपाय शामिल हैं। इस तरह के निर्णय अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून के तहत प्रासंगिक दायित्वों के अनुरूप, उनके रीति-रिवाजों, परंपराओं, नियमों और कानूनी व्यवस्थाओं पर समुचित रूप से ध्यान देते हुए किये जायेंगे।"

सामान्य जीवन में किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों को न्याय से दूर रखना और हर तरह के भेदभाव का शिकार बनाना निरपवाद सरकारी चलन है। आन्दोलन के दौरान ये भेदभाव और अड़ंगेबाजी कदम-कदम पर दिखाई दिये। यहाँ तक कि नये कृषि कानून में एक प्रावधान यह भी है कि किसानों और निजी व्यापारियों के बीच विवाद को सुलझाने का दायित्व न्यायपालिका की जगह प्रशासनिक अधिकारी के जिम्मे होगा। जाहिर है कि संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र में निहित "विवादों के समाधान के लिए निष्पक्ष प्रक्रियाओं तक पहुँच और मानव अधिकारों के सभी उल्लंघनों के लिए प्रभावी उपाय" तथा "न्याय तक प्रभावी और बिना भेदभाव के उनकी पहुँच" की इन कृषि कानूनों में धज्जी उड़ायी गयी है।

❖ घोषणा के अनुच्छेद 16 (2) में कहा गया है कि राज्यों को अपने उत्पादों को बाजारों में बेचने के लिए किसानों के हित में कदम उठाने के लिए बाध्य होना चाहिए। यह इस प्रकार है--

> "राज्य किसानों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य लोगों को स्थानीय, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय बाजारों में अपने उत्पादों की बिक्री के लिए परिवहन और प्रसंस्करण, सुखाने और भण्डारण की सुविधा मुहैय्या करने के आवश्यक उपाय करेंगे, जो उन्हें एक अच्छी आय और आजीविका की गारंटी देते हों।"

किसानों के लिए "अपने उत्पादों की बिक्री के लिए परिवहन और प्रसंस्करण, सुखाने और भण्डारण की सुविधा मुहय्या करने" की तो बात ही क्या, उलटे तीन कृषि कानूनों के जरिये सरकारी मण्डी समिति के पहले से मौजूद जर्जर ढाँचे को भी पूरी तरह खत्म करने का उपाय किया गया है। साथ ही "अपने उत्पादों की बिक्री के लिए इन बाजारों में पूर्ण और समान पहुँच और भागीदारी" की जगह इन कानूनों के जरिये सरकार ने बहुराष्ट्रीय निगमों और दैत्याकार देशी-विदेशी अनाज व्यापारियों के आगे छोटे-मझोले किसानों को चारा बनाकर फेंक दिया है।

इन प्रावधानों के अलावा, संयुक्त राष्ट्र घोषणा में विस्थापन के खिलाफ किसानों के अधिकारों, अपने परम्परागत बीजों के अधिकार, पीढ़ियों से चले आ रहे पारम्परिक ज्ञान के अधिकार, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के मानकों के अधिकार, पर्याप्त आवास के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा के अधिकार, पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण इत्यादि को भी एक-एक कर शामिल किया गया है।

ये अब ऐसे अधिकारों में शामिल हैं जो किसानों के अधिकारों के संरक्षण के लिए अन्तरराष्ट्रीय मानक बन गये हैं, जिन पर भारत सरकार ने भी हस्ताक्षर किया है। घोषणा में जिन अधिकारों को विस्तार से रेखांकित और व्याख्यायित किया गया है, उन सबका उल्लंघन करके ही तीन कृषि कानूनों को संसद में पास करवाया गया है। किसानों और ग्रामीण क्षेत्र के मेहनतकशों की आजीविका को प्रभावित करने वाले इन कानूनों के निर्माण और इन कानूनों के पारित होने से पहले किसानों या किसान संगठनों को उस प्रक्रिया में शामिल न करना और उनसे बातचीत न किया जाना उनके अधिकारों का उल्लंघन है।

तीन कृषि कानूनों के खिलाफ किसान संगठनों के आन्दोलन और भारतीय संविधान

विपक्ष के भारी हंगामे, कानून की प्रति फाड़ दिये जाने और ध्वनि मत से बिल पारित करने पर हंगामा खड़ा किये जाने के बावजूद तीन कृषि कानूनों को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित करा लिया गया। यह लोकतांत्रिक शासन और कानून का एक मजाक ही था, जिसके खिलाफ देश भर में बड़े पैमाने पर किसानों ने आन्दोलन किया। सवाल यह है कि हमारे संविधान में किसानों के लिए कौन से अधिकार निहित हैं?

भारतीय संविधान, जो दुनिया का सबसे विस्तृत लिखित संविधान है, उसमें मौलिक

अधिकारों के मामले में एक लोकतांत्रिक सरकार के कई सिद्धान्तों को दर्ज किया गया है, जिनकी बुनियाद पर यह संविधान खड़ा है। संविधान में किसानों के लिए अलग से कोई विशिष्ट अधिकार भले ही दर्ज न हों, लेकिन इसे कानून बनाते समय इसकी व्याख्या करने की जिम्मेदारी संवैधानिक अदालतों, जैसे--सर्वोच्च न्यायालय और विधायिका पर छोड़ दिया गया है ताकि उनको अमल में लाया जा सके। संसद द्वारा तीन कृषि कानूनों को बिना किसानों और ग्रामीण मेहनतकशों के साथ किसी संवाद और परामर्श के पारित करवाना, संविधान सम्मत नहीं, बल्कि उसका विरोधी है। जाहिर है कि इन तीन कानूनों को पारित करने से पहले सरकार ने संविधान के इन जरूरी हिस्सों को पढ़ने और व्याख्या करने की जहमत नहीं उठायी।

संविधान का भाग तीन अनुच्छेद 12 से अनुच्छेद 35 में निहित मौलिक अधिकारों के लिए समर्पित है।

अनुच्छेद 13 के तहत, शुरुआत में ही संविधान कहता है कि ऐसे सभी कानून, जो मौलिक अधिकारों के साथ असंगत या अपमानजनक होंगे, वे शून्य (अमान्य) हो जाएँगे। अनुच्छेद 13 का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान सर्वोपरि है।

अनुच्छेद 14 कानून के आगे समानता को सर्वश्रेष्ठ बनाता है। इस अनुच्छेद की व्याख्याओं में, 'माला फाइड' की अवधारणा है, जिसमें कहा गया है कि अनुचित जल्दीबाजी में राज्य द्वारा की गयी किसी भी कार्रवाई को दुर्भावनापूर्ण माना जाना चाहिए, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन्द्रप्रीत सिंह कहलों बनाम पंजाब राज्य के मामले में व्याख्या की गयी है।

तीनों कृषि कानूनों में सभी छोटे और बड़े किसानों को समान अवसर नहीं देने के लिए आलोचना की जा रही है, क्योंकि सभी किसानों को अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में और निजी व्यापारियों को अपनी उपज बेचने की अनुमति देने से बड़े और धनी किसानों को भले ही कुछ लाभ हो, कृषि उत्पादन बाजार समितियों (एपीएमसी) की भूमिका कम किये जाने के चलते छोटे किसान अपनी मोलभाव की क्षमता के साथ-साथ सुलभ बाजार से भी हाथ धो देंगे। चूँकि ये कानून पूँजीपतियों और बड़े किसानों को लाभ पहुँचाने वाले हैं, इसलिए इनसे कानून के समक्ष सबकी समानता और अनुच्छेद 14 के तहत कानून की समान सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह खड़े होते हैं।

इसके अलावा, अनुच्छेद 19, उप-खण्ड (ए), (बी) और (सी) भारत के किसानों पर

भी उतना ही लागू होता है, जितना किसी भी अन्य नागरिक पर। बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, शान्तिपूर्वक इकट्ठा होने का अधिकार और संगठन या यूनियन बनाने का अधिकार, ये सभी महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार हैं और वर्तमान परिस्थितियों में पूरी तरह उचित हैं जहाँ किसान अपने प्रतिनिधि यूनियनों और संगठनों के समर्थन से सड़कों पर उतर रहे हैं, ताकि सरकार की नीति के खिलाफ उनके असन्तोष की आवाज को सुना जा सके। किसान आन्दोलन के प्रति केन्द्र और राज्य सरकारों का रवैया किसानों के मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात है।

अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को सुनिश्चित करता है और यह एक ऐसा अनुच्छेद है जिसकी सबसे व्यापक व्याख्या हुई है। इन व्याख्याओं में से एक आजीविका का अधिकार भी है। आनेवाले समय में छोटे किसानों की आजीविका को गंभीर रूप से प्रभावित करने के लिए इन तीन कृषि कानूनों की आलोचना की जा रही है, क्योंकि गरीब किसान उन धनी किसानों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम नहीं होंगे, जो आसानी से निजी व्यापारियों को अपनी उपज बेच लेंगे, जबकि छोटे किसान अपनी आजीविका और जमीन गँवाने पर मजबूर होंगे।

मौलिक अधिकारों के अलावा, संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त (डीपीएसपी) भी शामिल हैं, जिन्हें मौलिक अधिकारों और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का प्रतीक माना जाता है। यदि सरकार की कोई नीति डीपीएसपी का उल्लंघन करके बनायी गयी हो तो उनको लागू नहीं किया जा सकता और ऐसे कानून को सरकार के कानूनी अधिकारों से परे (अल्ट्रा विरेस), संविधान सम्मत नहीं माना जा सकता है। लेकिन, डीपीएसपी के किसी प्रवाधना को भी प्रभावी बनाने के लिए लागू किये गये किसी कानून का यथासम्भव पालन होना चाहिए। कुछ नीति निर्देशक सिद्धान्त जो किसानों के अधिकारों और वर्तमान मामलों पर लागू हो सकते हैं, वे हैं--

> राज्य, विशेष रूप से, आय में असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा, और न केवल व्यक्तियों के बीच, बल्कि अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले या अलग-अलग पेशों में लगे लोगों के समूहों के बीच की असमानताओं को समाप्त करने का भी प्रयास करेगा।
>
> राज्य, विशेष रूप से, अपनी नीति को यह सुनिश्चित करने की दिशा में निर्देशित करेगा- कि अर्थव्यवस्था के संचालन से धन और उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण होने के चलते सामान्य अवरोध न उत्पन्न हो;

राज्य, उपयुक्त कानून या आर्थिक संगठन या किसी अन्य तरीके से सभी श्रमिकों-- खेतिहर मजदूर, औद्योगिक मजदूर या अन्य काम करने वाले मजदूर के लिए जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी, जीवन की एक समुचित मानक सुनिश्चित करने वाली कार्य-स्थिति तथा अवकाश और सामाजिक-सांस्कृतिक अवसर का पूरा आनन्द लेने के लिए सुरक्षित माहौल बनाने का प्रयास करेगा।

इसके आलावा, अनुच्छेद 51 (सी) भी है जिसमें कहा गया है कि राज्य संगठित लोगों के साथ परस्पर व्यवहार में अन्तरराष्ट्रीय कानून और सन्धि के दायित्वों के प्रति सम्मान बढ़ाने का प्रयास करेंगे। अन्तरराष्ट्रीय सन्धियाँ और सम्मेलन अपने आप राष्ट्रीय कानून का हिस्सा नहीं बनते हैं, बल्कि अदालतें आमतौर पर कानून की व्याख्या करती हैं ताकि अन्तरराष्ट्रीय कानूनों और सम्मेलनों के साथ सामंजस्य बना रहे। इस मामले में, ऊपर विस्तार से बताया गया है कि ये तीनों कृषि कानून "किसानों और ग्रामीण क्षेत्र में काम करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों पर घोषणा 2018" के अनुरूप नहीं हैं, जिस घोषणा को संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद ने स्वीकृत किया है, जिसका भारत भी एक सदस्य है।

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) समझौते के साथ तीन कृषि कानूनों का सम्बन्ध

भारत के किसानों और कृषि क्षेत्र के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व व्यापार संगठन के दृष्टिकोण परस्पर विरोधी हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ किसानों के हित में उनके अधिकारों की घोषणा पारित करता है, जबकि विश्व व्यापार संगठन खेती को देशी-विदेशी पूँजीपतियों के मुनाफे के लिए पूरी तरह खोलने तथा हर तरह की सरकारी सहायता और नियंत्रण समाप्त करने के लिए दबाव बनाता है।

विश्व व्यापार संगठन 1994 में अस्तित्व में आया, जिसका उद्देश्य दुनियाभर के पूँजीपतियों के हित में विश्व व्यापार के अवरोधों को हटाना और इसके लिए सरकारों के बीच सहमति बनाना था। इससे पहले ब्रेटनवुड सम्मलेन 1944 में गठित व्यापार और तटकर सम्बन्धी आम सहमति (गैट) संस्था के जरिये दुनियाभर में औद्योगिक मालों के व्यापार और तटकर सम्बन्धी विवादों को सुलझाया जाता था। यह संस्था आपसी विचार-विमर्श का मंच थी, लेकिन इसके फैसले बाध्यकारी नहीं थे। अस्सी के दशक के मध्य में गैट के अध्यक्ष आर्थर डंकल की ओर से एक प्रस्ताव जारी किया गया, जिसे डंकल प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है। इस प्रस्ताव में कृषि क्षेत्र, सेवा क्षेत्र और ज्ञान-आधारित

उद्योग को पहली बार विश्व व्यापार समझौते में शामिल किये जाने की बात आयी। असमाधेय संकट से ग्रसित विश्व पूँजीवादी व्यवस्था को संकट से उबारने और साम्राज्यवादी पूँजी के हित में मुनाफे के नये-नये क्षेत्र खोलने के लिए डंकल प्रस्ताव में शिक्षा, स्वास्थ्य और खाद्यान्न जैसी जीवनोपयोगी सेवाओं और वस्तुओं को विश्व व्यापार में शामिल करने की माँग उठी। इसके लिए शर्तों और नियमों पर लगभग आठ साल तक बहस चली। दरअसल उस समय पूर्व समाजवादी देशों और नवस्वाधीन देशों में विदेशी पूँजी और मालों के आने-जाने पर कई तरह के प्रतिबन्ध थे और उनके ऊपर भारी आयात शुल्क और तटकर भी लगा रखे थे। इन बाधाओं को हटाने के लिए विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबाव से ऐसे तमाम देशों में ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम चलाया गया और दुनियाभर में साम्राज्यवादियों की लूट तथा पूँजी और मालों की आवाजाही के रास्ते में खड़ी सभी बाधाओं को एक-एक कर के हटाया गया। दुनियाभर की जनता और जन संगठनों ने इसका प्रबल विरोध किया, क्योंकि इसके शर्तनामे पूरी तरह पूँजीपतियों के हित में और विश्व जनगण के खिलाफ थे।

वैसे तो डंकल प्रस्ताव साम्राज्यवादी देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितों को सर्वोपरि रखकर तैयार किया गया था, लेकिन भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों के पूँजीपतियों के लिए भी इसमें कुछ गुंजाइश थी, जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ साझेदारी करके अपने देशों की जनता को लूटने का मंसूबा बना रहे थे। इनके पास पूँजी और तकनीक का अभाव था, लेकिन इन देशों में सस्ता श्रम और कच्चा माल तथा मुट्ठी भर खाते-पीते लोगों का बाजार था, जिसे मुनाफे में बदलने के लिए उनको बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का साथ चाहिए था। इन देशों के शासकों ने अपने देश के संसाधनों के दम पर आत्मनिर्भर विकास की नीतियों को तिलांजलि दे दी और विदेशी पूँजी से हाथ मिलाकर वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण का रास्ता पकड़ लिया।

दरअसल 1990 के आसपास रूसी खेमे के पतन और एकध्रुवीय विश्व के अस्तित्व में आने के बाद विश्व शक्ति सन्तुलन में जो बदलाव आया, उसके चलते अमरीकी चौधराहट में विश्व पूँजीवादी व्यवस्था को पूरी दुनिया पर थोपने का साम्राज्यवादी देशों का मंसूबा पूरा हो गया। इसे ही वैश्वीकरण के नाम पर पूरी दुनिया पर आरोपित किया गया, जिसके शीर्ष पर विकसित पूँजीवादी देश हैं। जाहिर है कि इस नयी विश्व व्यवस्था में धनी और गरीब देशों के बीच असमान सम्बन्ध हैं, वर्चस्व और मातहती का सम्बन्ध है। पहले इस काम को दुनिया के बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों के हित में विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा संचालित किया जाता था, लेकिन डब्ल्यूटीओ बनने के बाद

इन साम्राज्यवादी संस्थाओं की भूमिका उसके सहायक की हो गयी। इसका मकसद पूरी दुनिया में पूँजी की निर्बाध आवाजाही सुनिश्चित करना तथा दुनिया को लूट और मुनाफे का मुक्त क्षेत्र बनाना है।

डब्ल्यूटीओ की सभी शर्तें जालसाजी और मनमानी पर आधारित हैं, चाहे खेती और अन्य क्षेत्रों को सरकारी सहायता (सबसिडी) ख़त्म करने का मामला हो या आयात-निर्यात की शर्तों का। ये सभी शर्तें साम्राज्यवादी देशों द्वारा बहुत ही धूर्ततापूर्ण तरीके से लागू करवाये गये समझौतों का नतीजा हैं, जो डंकल प्रस्ताव को तीसरी दुनिया के देशों पर थोपने और अपने देश के पूँजीपतियों के हितों को सुरक्षित रखने के लिए कई वर्षों और कई चक्रों में पूरे किये गये। भारत जैसे देशों के शासकों का हित भी इनसे जुड़ा हुआ है, जो अपने देश की बहुसंख्यक जनता की तबाही की कीमत पर अपने देश के पूँजीपतियों का हित साधने में यकीन रखते हैं। देशी-विदेशी पूँजी के इसी गठजोड़ को कायम रखने के लिए हमारे देश की सरकारें डब्ल्यूटीओ की असमान शर्तों को स्वीकारते हैं और उसे कानून बनाकर अपनी जनता पर थोपते हैं।

2018 में जब संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवाधिकार परिषद किसानों और ग्रामीण क्षेत्र के मेहनतकशों के अधिकारों का घोषणापत्र जारी कर रहा था, उसी वर्ष सितम्बर महीने में डब्ल्यूटीओ की कृषि सम्बन्धी कमिटी में भारत सरकार पर सरकारी सब्सिडी कम करने और कृषि क्षेत्र में सुधार के लिए भारी दबाव पड़ रहा था। आस्ट्रेलिया ने चीनी, दाल और दूध पाउडर के मामले में निर्यातकों को आसान शर्तों पर कर्ज देने और आयात शुल्क दुगुना करने पर सवाल उठाया था। अमरीका ने खाद्य सुरक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा अनाज की सरकारी खरीद और भण्डारण पर सवाल खड़ा किया। इससे पहले भी, भारत सरकार ने 2013 में जब अपने देश में भुखमरी के शिकार करोड़ों लोगों को सस्ता अनाज मुहैया करने के लिए खाद्य सुरक्षा कानून बनाया था, तो उसी वर्ष बाली में आयोजित डब्ल्यूटीओ की मंत्री-स्तरीय बैठक में उन देशों ने भारी विरोध किया था जिनका दुनिया के अनाज व्यापार पर वर्चस्व कायम है। भारत सरकार ने ग्रुप 33 के देशों के समर्थन से तात्कालिक रूप से उस कानून को लागू करने की अनुमति हासिल कर ली थी, हालाँकि बदले में उसे "व्यापार सहूलियत समझौता" को स्वीकार करना पड़ा था, जिसका मकसद धनी देशों के लिए भारत में पूँजी निवेश बाजार तक पहुँच को सुगम बनाना था।

भारत सरकार ने बाली सम्मलेन में ही सरकारी खरीद और भण्डारण का स्थायी समाधान निकालने की माँग की थी, जिस पर बाद के दो मंत्री-स्तरीय बैठकों में कोई सहमति नहीं बनी। 2017 के ब्यूनस आयर्स सम्मलेन में भी भारत ने इसे भूख और कुपोषण

के शिकार करोड़ों लोगों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बताते हुए इस पर पुनर्विचार की माँग की, लेकिन विश्व व्यापार संगठन के विकसित देशों ने सब्सिडी की सीमाओं का उल्लंघन होने के नाम पर सरकारी खरीद और भण्डारण की अनुमति नहीं दी।

2018 में जब दुनिया में व्यापार युद्ध तेज हुआ तो अमरीका ने भारत सरकार द्वारा खाद्यान्न और लगभग एक दर्जन कृषि उत्पादों का न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) तय करने की पुरानी नीति पर जोरदार हमला किया। उसका कहना था कि भारत में बाजार मूल्य समर्थन (एमपीएस) और न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के बीच का अन्तर डब्ल्यूटीओ की 10 प्रतिशत तक छूट से अधिक है। हमारे देश में सरकारी खरीद का बड़ा हिस्सा धान और गेहूँ का है जो खाद्य सुरक्षा के तहत सस्ते राशन की आपूर्ति के लिए बेहद जरूरी है। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में सरकार द्वारा एमएसपी पर खरीद बहुत कम होती है और हर साल इसके लिए किसानों को आन्दोलन करना पड़ता है।

यह बात भी ध्यान देने लायक है कि डब्ल्यूटीओ ने एमएसपी के मामले में गलत मानदण्ड तय किया है। इसके तहत डब्ल्यूटीओ विकसशील देशों को किसी कृषि उपज के लिए बाजार भाव या एक्सटर्नल रिफरेन्स प्राइस (ईआरपी) से 10 प्रतिशत अधिक एमएसपी तय करने की छूट देता है। लेकिन ईआरपी अपने देश के बाजार भाव से तय नहीं होता, बल्कि इसके लिए 1986-88 में निर्धारित विश्व बाजार की कीमत को मानक माना जाता है, जबकि उसके बाद से कीमतों में पाँच गुने से भी ज्यादा बढ़ोतरी हो चुकी है।

इसी गलत पैमाने से गणना करके अमरीका ने कहा कि 2013-14 में भारत सरकार दवारा दी जाने वाली सबसिडी धान के मामले में उत्पादन लागत से 77 प्रतिशत और गेहूँ के मामले में 65 प्रतिशत अधिक है, जबकि भारत सरकार के मुताबिक न्यूनतम समर्थन मूल्य धान के मामले में 5.45 प्रतिशत और गेहूँ के मामले में लागत से भी कम है। अमरीका भारत में दी जाने वाली सबसिडी की गणना रुपये में करता है, जबकि भारत डॉलर में। यही नहीं, अमरीका धान और गेहूँ के कुल उत्पादन के ऊपर सबसिडी का हिसाब लगाता है, न कि सरकार द्वारा एमएसपी पर की गयी खरीद की मात्रा पर। सच्चाई यह है कि हमारे देश में इनकी कुल उपज में से आधे की भी सरकारी खरीद नहीं होती। सबसिडी की गणना में धाँधली करके उसे कम करने या खत्म करने का मकसद कृषि उत्पादों की खरीद-बिक्री से सरकारी नियंत्रण हटाना और देशी-विदेशी अनाज व्यापारियों के मुनाफे की गारंटी करना है।

जहाँ तक सबसिडी का सवाल है, दुनिया के सभी देश अपने कृषि क्षेत्र को सबसिडी देते हैं, क्योंकि इसके बिना खेती को टिकाऊ बनाना सम्भव ही नहीं। डब्ल्यूटीओ में शामिल देशों के लिए साम्राज्यवादी देशों ने ऐसा फार्मूला बनाया है कि वे खुद तो अपने कृषि क्षेत्र

को बेहिसाब सबसिडी देते हैं, लेकिन विकासशील देशों पर पाबन्दी लगाते हैं। सबसिडी के लिए डब्ल्यूटीओ ने तीन रंग के बक्से बनाये है। जिस सबसिडी से मुक्त बाजार में व्यवधान नहीं होता, उसे हरे रंग के बक्से में रखा गया है। यह सबसिडी उत्पादकों को सीधे दी जाती है। कम व्यवधान वाली सबसिडी को नीले बक्से में रखा गया है और जिस सबसिडी को मुक्त व्यापार के लिए घातक माना जाता है उसे अम्बर (पीला) बक्से में रखा गया है। जैसे, यदि कोई देश अपने किसानों से बाजार भाव से अधिक दाम पर उपज की सरकारी खरीद करता है या बाजार से सस्ते दामों पर राशन की आपूर्ति करता है, तो इसे बाजार के साथ छेड़खानी समझा जाता है, जिससे खुली प्रतियोगिता करके मुनाफा कमाने में बाधा पहुँचती है। पहले दो बक्से वाली सबसिडी की कोई सीमा नहीं, जबकि पीले बक्से के लिए सबसिडी की सीमा विकासशील देशों के लिए कुल उत्पादन खर्च का 10 प्रतिशत और विकसित देशों के लिए 5 प्रतिशत तय है। अमरीका ने बड़ी चालाकी से अपनी कृषि सबसिडी का बड़ा हिस्सा (88 प्रतिशत) हरे बक्से में डाल लिया। अनाज के विश्व व्यापार में सबसे ज्यादा हिस्सेदारी वाले देशों की सबसिडी 1995 में 61 अरब डॉलर थी जो 2015 में बढ़कर 139 अरब डालर हो गयी। दुनिया के बाजार पर कब्जा करने के लिए अमरीका अपने कृषि क्षेत्र को भारी सबसिडी देता है, लेकिन भारत की सबसिडी जो धनी देशों की तुलना में बहुत कम है और जिसके बिना अस्सी प्रतिशत छोटे-मझोले किसानों के लिए खेती करना सम्भव नहीं, उसमें लगातार कटौती करने की माँग करता है। यही कारण है कि भारत में दी जानेवाली सबसिडी 2014-15 में 20.8 अरब डॉलर से घटकर 2015-16 में 18.3 अरब डॉलर हो गयी। इसमें से बड़ी राशि खाद्य सुरक्षा और सस्ते राशन के लिए सरकारी खरीद और भण्डारण पर खर्च होता है जो 2014-15 में 17.1 अरब डॉलर से घटकर 2015-16 में 15.6 अरब डॉलर रह गयी।

अमरीका अपने फार्मरों को कितनी सबसिडी देता है, इसका अन्दाजा इसी से लग जाता है कि वहाँ के 10 बड़े फार्मरों को हर साल 18 लाख डॉलर की सबसिडी प्रति परिवार देता है, जो अमरीकी परिवारों की औसत आमदनी से 30 गुना ज्यादा है। विश्व व्यापार संगठन के इसी अन्यायपूर्ण और असमान समझौतों तथा उसके साथ हमारे शासकों के गठजोड़ का नतीजा है कि सरकार दिनोंदिन सबसिडी में कटौती करके अपने देश के किसानों और अभावग्रस्त जनता की जिन्दगी तबाह कर रही है। तीन कृषि कानून इसी की चरम परिणति हैं।

जैसा कि सभी जानते हैं, भारत डब्ल्यूटीओ का संस्थापक सदस्य है और उसके अन्तर्गत कृषि सम्बन्धी बहुपक्षीय करार पर दस्तखत कर चुका है, जो कमिटी कृषि व्यापार सम्बन्धी मामलों को नियंत्रित करती है। यह कमेटी किसानों को दी जानेवाली सबसिडी, न्यूनतम

समर्थन मूल्य पर कृषि उपज की खरीद और खाद, बीज, पानी, बिजली इत्यादि के लिए सरकारी सहायता पर रोक लगाती है। यह समझौता उरुग्वे चक्र की वार्ताओं में 1986 से 1993 के बीच हुआ था और उसके बाद से ही हर बैठक में इससे जुड़े विवाद के मुद्दों पर चर्चा होती रही है। अमरीका ने भारत को सबसिडी के मामले में जवाबी अधिसूचना इसी कमिटी की बैठक में दी थी।

डब्ल्यूटीओ के मुताबिक भारत 2018 में धान के लिए सबसिडी की निर्धारित सीमा पार कर गया। इसके लिए उसने बाली शान्ति अनुच्छेद का सहारा लिया, जिसके तहत किसी विकासशील देश द्वारा कुछ निश्चित जिम्मेदारियों के उल्लंघन किये जाने के खिलाफ किसी अन्य देश को शिकायत करने पर रोक है। उसने चीन के साथ मिलकर अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और अन्य देशों के आरोपों का जवाब दिया और बताया कि ये देश खुद हमसे 100 गुना से भी ज्यादा सबसिडी देते हैं, जबकि हमारे यहाँ सबसिडी देना करोड़ों लोगों को तबाही से बचाने की अनिवार्य शर्त है। इस विवाद में ग्रुप 33 (पहले 33 देशों ने इसे बनाया था, अब इसमें 47 देश हो गये हैं।) ने भी भारत का साथ दिया था। जाहिर है कि डब्ल्यूटीओ के दबाव की आड़ में सरकार खुद ही देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हित में सबसिडी हटाने और खाद्य सुरक्षा तंत्र को चौपट करने पर आमादा है। तीन खेती कानून के जरिये वह यही करना चाहती है।

सवाल यह है कि क्या भारत सरकार डब्ल्यूटीओ में शामिल रहते हुए और उसके नियमों का उल्लंघन किये बिना अपने देश में वैधानिक रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारन्टी कर सकती है? क्या अपने देश के खाद्य सुरक्षा कानून का पालन करते हुए अनाज का सरकारी भण्डारण और सस्ते गल्ले की दुकानों पर उसकी आपूर्ति कर सकती है? अगर नहीं, तो क्या देश के 80 प्रतिशत छोटी जोत वाले किसानों की तबाही और बहुसंख्य गरीब जनता को भुखमरी और कुपोषण से बचाना सम्भव है?

नवउदारवादी दौर में खेती और किसानों पर देशी-विदेशी पूँजी का चौतरफा हमला

अब तक हमने तीन खेती कानून 2020 के सन्दर्भ में एक तरफ किसानों और ग्रामीण क्षेत्र के मेहनतकशों के अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद की घोषणा और भारत के संविधान में निहित किसानों के मौलिक अधिकारों की रोशनी में तथा दूसरी ओर साम्राज्यवादी पूँजी के हित में काम करनेवाले विश्व व्यापार संगठन शर्तनामों की

रोशनी में भारतीय शासकों की नीति और नीयत को परखने का प्रयास किया। यह निर्विवाद सच्चाई है कि इन कानूनों को बनाते हुए सरकार ने किसानों को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र से और राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय संविधान द्वारा लम्बे संघर्षों के बाद हासिल बुनियादी अधिकारों और उनके प्रति अपनी वचनबद्धता को ताक पर रख दिया, जबकि देशी-विदेशी कॉर्पोरेट के दबावों और सुझावों को पूरी तरह ध्यान में रखा। इस आधार पर यह कहना बिलकुल तथ्यात्मक और न्यायसंगत है कि ये तीनों कानून पूरी तरह अवैध हैं। इनके पीछे देश की खेती-किसानी और किसानों की स्थिति में सुधार लाना नहीं, बल्कि विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और देश के गिने-चुने कॉर्पोरेट घरानों की लूट-खसोट का रास्ता साफ करना है। यही वजह है कि डब्ल्यूटीओ सहित देशी-विदेशी पूँजीपतियों के तमाम संगठन इन तीनों कानूनों को पास करवाने के लिए सरकार की तारीफ कर रहे हैं, जबकि देश के किसान इनके खिलाफ जीवन-मरण का संघर्ष चला रहे हैं।

पिछले साल अगस्त महीने में जब पंजाब के किसान तीन कृषि कानूनों के खिलाफ आन्दोलन करके उन्हें वापस लेने की माँग कर रहे थे, उसी समय प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी भारत और अमरीका के पूँजीपतियों की सभा में "बेहतर भविष्य के निर्माण के लिए" बातचीत कर रहे थे। "अमरीका-भारत व्यापार परिषद" के उस सम्मेलन में भाषण देते हुए उन्होंने अमरीकी पूँजीपतियों को "आत्मनिर्भर भारत" में पूँजी निवेश का निमंत्रण दिया। उन्होंने कहा कि तीन नये कृषि कानूनों के जरिये जो सुधार लाये गये हैं, उनसे कृषि उपज के विश्व व्यापार को आसान बनाने की सुविधा मिलेगी। साथ ही उन्होंने घोषित किया कि उम्मीद है कि 2025 तक भारत का खाद्य प्रसंस्करण उद्योग 500 अरब डालर के बराबर हो जायेगा।

दूसरी ओर, आन्दोलनरत किसानों को सरकार महज खोखले आश्वासनों और हवाई बातों के जरिये इन कृषि कानूनों के फायदे समझाने की असफल कोशिशें करती रही। जाहिर है कि किसानों का हित और पूँजीपतियों का हित एक दूसरे के विरोधी हैं और इन तीन खेती कानूनों का उद्देश्य किसानों की आमदनी बढ़ाना नहीं, बल्कि उनकी तबाही की कीमत पर पूँजीपतियों के लिए मुनाफे के नये-नये रास्ते निकलना और उनके मुनाफे में भरपूर इजाफा करना है।

दरअसल नरसिंहा राव और मनमोहन सिंह सरकार द्वारा 1991 में नयी आर्थिक नीति लागू किये जाने के बाद से ही भारत में नवउदारवादी नीतियों की शुरुआत हुई थी। यह सब विश्व बैंक-मुद्रा कोष की निगरानी में वैश्वीकरण-उदारीकरण-निजीकरण जैसे लुभावने शब्दों की आड़ में किया गया। साम्राज्यवादी विदेशी पूँजी और उनकी साझेदार भारतीय

पूँजी के हित में भारतीय अर्थव्यवस्था को ढालने के लिए ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम शुरू हुआ, जिसका मकसद अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सरकारी नियंत्रण खत्म करना, विदेशी पूँजी निवेश और आयात-निर्यात प्रतिबंधों को हटाना तथा खुले बाजार और मुक्त व्यापार का रास्ता साफ करना था। खेती-किसानी को भी इन्हीं नीतियों के अनुसार ढालने के लिए 1993 में कांग्रेस सरकार ने कृषि नीति प्रस्ताव जारी किया जिसका भाजपा सहित लगभग सभी विपक्षी पार्टियों ने भी भरपूर समर्थन किया। 1991 के बाद इन नीतियों के तहत कृषि क्षेत्र में किये गये प्रमुख बदलाव, जिनको पिछले तीन दशकों में विभिन्न गठबंधन सरकारों ने बढ़-चढ़ कर लागू किये, वे इस प्रकार हैं--

1. पहले से चली आ रही सरकारी योजना और राज्य के नियंत्रण में कृषि शोध और प्रसार कार्यक्रम, कृषि लागत सामग्री की कम कीमत पर किसानों को आपूर्ति, सस्ते व्याज दर पर बैंक कर्ज, न्यूनतम समर्थन मूल्य पर फसलों की खरीद, भण्डारण और आपूर्ति की पूरी श्रृंखला को एक-एक कर छिन्न-भिन्न किया गया।

कृषि विकास योजनाओं, जैसे-- सिंचाई, मिट्टी की गुणवत्ता सुधारने, उन्नत किस्म के बीज पर शोध इत्यादि के मद में सार्वजानिक पूँजी निवेश और खेती के मद में लगातार बजट कटौती की गयी।

2. सरकारी हस्तक्षेप कम करने के साथ-साथ विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए कृषि क्षेत्र का दरवाजा खोला गया। भारत-अमरीका कृषि ज्ञान पहल (नॉलेज इनिसिएटिव इन एग्रीकल्चर) के तहत विदेशी कम्पनियों के साथ रणनीतिक सहयोग की शुरुआत की गयी। इसके बोर्ड में बीज, कीटनाशक, अनाज व्यापार और खुदरा बाजार में धंधे में लगी विराट अमरीकी कम्पनियों--मोनसेंटो, वालमार्ट, आर्चर-डेनियल-मिडलैंड, भारत में कार्यरत आईटीसी जैसी कम्पनियों तथा पूँजीपतियों की संस्था फिक्की और सीआईआई को शामिल किया गया। उसके बाद से ही इस बोर्ड का कृषि नीति और शोध में हस्तक्षेप शुरू हुआ। कृषि उपज और खुदरा व्यापार में विदेशी कम्पनियों को निवेश की छूट दी गयी। सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र की जिम्मेदारी से मुँह मोड़कर विदेशी पूँजी के जरिये कॉरपोरेट खेती को बढ़ावा दिया गया।

3. विश्व व्यापार संगठन के दबाव में 1429 वस्तुओं के आयत पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाया गया और आयत शुल्क में भारी कमी की गयी, निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी सहायता दी गयी, सस्ती जमीन, बिजली, पानी, सड़क और अन्य सुविधाओं के साथ-साथ कर-मुक्त विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) बनाये गये। कुल मिलाकर भारत के बदहाल किसानों को लाखों करोड़ सबसिडी पानेवाले विकसित

पूँजीवादी देशों के धनाढ्य किसानों के साथ प्रतियोगिता के नाम पर देशी बाजार को सस्ते विदेशी कृषि उत्पादों से पाटने का रास्ता साफ कर दिया गया।

4. खाद, बीज, पानी, बिजली पर दी जाने वाली सरकारी सहायता (सबसिडी) में लगातार कटौती की गयी, कृषि शोध और प्रसार सेवाओं में कमी की गयी, खाद-बीज की कीमतों और उनके व्यापार से सरकारी नियंत्रण समाप्त कर, उनको दिनोंदिन महँगा किया गया। खेती की लागत सामग्री--खाद, बीज, कीटनाशक, डीजल, बिजली बिल, कृषियंत्र इत्यादि से सबसिडी हटाये जाने और महँगाई पर नियंत्रण न होने के चलते खेती की लगत में कई गुने की वृद्धि हुई।

5. न्यूनतम समर्थन मूल्य कम करने के लिए खेती के खर्च की गणना में गड़बड़ी की गयी, स्वामीनाथन आयोग के फार्मूले सी2 + 50 प्रतिशत को लागू न करके लागत मूल्य से भी कम समर्थन मूल्य तय किया जाने लगा और उस कीमत पर भी सरकारी खरीद नहीं हुई। एफसीआई के ढाँचे को जर्जर बनाकर निजी व्यापारियों के लिए औने-पौने दामों पर खरीद की परिस्थिति तैयार की गयी।

6. सामाजिक बैंकिंग के तहत ग्रामीण बैंक की शाखाओं द्वारा किसानों को सस्ते ब्याज दर पर मिलनेवाले कर्ज में भारी कमी की गयी और उन्हें निजी सूदखोरों की मर्जी पर छोड़ दिया गया। साथ ही, एग्री-बिजनेस कम्पनियों को कृषि ऋण के दायरे में लाकर किसानों के नाम पर आवंटित कृषि ऋण का बड़ा हिस्सा उनके हवाले किया गया।

7. भूमि सुधार और भूमि हदबंदी कानून को उलटकर, जमीन और संसाधनों को चन्द लोगों के हाथों में केन्द्रित किये जाने की नीति को बढ़ावा दिया गया। नतीजतन, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 1987-88 और 2011-12 के बीच भूमिहीन परिवारों की संख्या 35 प्रतिशत से बढ़कर 46 प्रतिशत हो गयी। इसी अवधि में ऊपर के दस प्रतिशत धनी परिवारों की जमीन का रकबा 2 प्रतिशत बढ़कर 50.2 प्रतिशत हो गया, जबकि नीचे के 50 प्रतिशत परिवारों के पास 4.1 प्रतिशत जमीन थी जो घटकर 0.4 प्रतिशत ही रह गयी।

8. विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड), खनन, उद्योग, शहरीकरण और इन्फ्रास्ट्रक्चर के नाम पर आलीशान रिहायशी कॉलोनी, गोल्फ के मैदान, फार्मूला रेसिंग ट्रेक और अय्यासी के अड्डे बनाने के लिए किसानों की लाखों एकड़ जमीन का जबरदस्ती अधिग्रहण किया गया और उसका विरोध करने या मुआवजा बढ़ाने की माँग करते हुए आन्दोलन करने पर किसानों का बर्बर दमन किया गया।

इन नीतियों का सबसे बुरा असर उन छोटी जोत वाले 85 प्रतिशत किसानों पर पड़ा

जो पहले ही जरूरी संसाधनों और पूँजी के आभाव की समस्या से जूझ रहे थे। खेती की लागत में कई-कई गुने की वृद्धि और फसल की उचित कीमत न मिलाने के कारण वे कर्ज के जाल में फँसते चले गये। नगदी फसल उगानेवाले किसानों को कर्ज का सबसे ज्यादा बोझ झेलना पड़ा। आँकड़ों के मुताबिक आज देश के किसानों पर दस लाख करोड़ रुपये का कर्ज है, जिसमें से 95 प्रतिशत कर्ज गरीब और माध्यम किसानों के सिर पर है। गरीब किसानों पर 65,170 रुपये प्रति एकड़ और मध्यम किसानों पर 55,575 रुपये प्रति एकड़ का कर्ज है। इन कर्जों में बैंकों और सहकारी संस्थाओं का हिस्सा सिर्फ 8-10 प्रतिशत है। बाकी कर्ज निजी सूदखोरों से ऊँची ब्याज दर पर लेना पड़ा। जब पुराना कर्ज नहीं चुका पाने के कारण सूदखोरों ने नयी फसल की लागत खरीदने के लिए कर्ज देने से मना कर दिया तो हताश होकर किसानों ने आत्महत्या करना शुरू किया। जिन किसानों ने किसी तरह पैसे का जुगाड़ कर के फसल लगा भी लिया, वे भी फसल का भाव गिरने और घाटे के चलते कर्ज न चुका पाने की स्थिति में आत्महत्या करने पर मजबूर हुए। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक आर्थिक नीति लागू होने के शुरुआती दस वर्षों (1991-2001) के दौरान 25,000 किसानों ने आत्महत्या की थी, जबकि पिछले तीस वर्षों में यह संख्या 3,50,000 से भी अधिक हो गयी है।

युगों-युगों से हमारे देश के किसान बाढ़, सूखा, अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं और शासक वर्गों के अमानुषिक शोषण-उत्पीड़न को सहते आ रहे हैं। ऐसे भी दौर आये जब अकाल और महामारी के चलते लाखों किसान मौत के मुँह में समा गये, लेकिन जीवन और संघर्ष के प्रति उनके अटूट विश्वास पर कभी आँच नहीं आयी। कैसी विडम्बना है कि इन नवउदारवादी नीतियों के लागू होने के बाद आधुनिक खेती के जरिये अधिक फसल उगाने के बावजूद किसान आत्महत्या करने को विवश हुए और यह सिलसिला अभी तक थमने का नाम नहीं ले रहा है।

इन नीतियों का दूसरा नतीजा यह है कि साल दर साल घाटा होने के चलते भारी संख्या में किसानों ने खेती करना छोड़ दिया। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार 1991 से 2001 के बीच 10 वर्षों में 44 लाख तथा 2001 से 2005 के बीच 1 करोड़ 70 लाख परिवार खेती छोड़ने पर मजबूर हुए। सिर्फ हरित क्रान्ति का अगुआ प्रदेश पंजाब में 2001 में 20,65,067 काश्तकार थे जिनमें से 2011 में 18,03,800 ही रह गये, यानी 2,61,267 किसान परिवारों ने दस साल के अन्दर खेती करना छोड़ दिया। एक रिपोर्ट के मुताबिक हर साल साढ़े तीन प्रतिशत किसान खेती से उजड़ रहे हैं और लगभग 40 प्रतिशत किसान कोई और रोजगार मिलने पर खेती छोड़ने के लिए तैयार हैं। खेती से उजड़ने वाले लोगों

के लिए उद्योग या सेवा क्षेत्र में भी कोई रोजगार नहीं है, क्योंकि वहाँ पहले से ही बेरोजगारी विकराल रूप धारण कर चुकी है।

कृषि संकट और किसानों की तबाही की इस विकट स्थिति में 2014 में मोदी सरकार सत्ता में आयी। किसानों की दुर्दशा के लिए पिछली सरकारों को खरी-खोटी सुनाने के साथ ही मोदी ने खेती का चौमुखी विकास करने, किसानों के लिए "अच्छे दिन" लाने और उनकी आत्महत्या रोकने के लिए कई लुभावने वादे किये। इन वादों में कृषि और ग्रामीण विकास में सरकारी निवेश बढ़ाने, किसानों की आय बढ़ाने के लिए कृषि लागत पर न्यूनतम 50 प्रतिशत आय सुनिश्चित करने, खेती की लागत सामग्री की कीमत और ब्याज दर कम करने, सिंचाई सुविधा बढ़ाने, कृषि बीमा योजना शुरू करने, विश्व बाजार में कृषि उपज की कीमतों के उतार-चढाव से किसानों की हिफाजत करने तथा 60 साल से अधिक उम्रवाले किसानों, गरीब किसानों और खेत मजदूरों के लिए कल्याणकारी योजना जैसी कई चीजें शामिल थीं।

लेकिन सत्ता में आते ही मोदी सरकार अपने सभी चुनावी वादे भूल गयी। उलटे उसने किसानों और कृषि क्षेत्र पर उन्हीं पुरानी नवउदारवादी नीतियों का पहले से भी तीखा हमला शुरू किया। सरकार बनाने के कुछ ही समय बाद मोदी सरकार ने सर्वोच्च न्यायलय में यह हलफनामा दाखिल किया कि किसानों को स्वामीनाथन आयोग द्वारा अनुशंसित, खेती के लागत खर्च पर 50 प्रतिशत न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करना सम्भव नहीं है। यही नहीं, उसने राज्य सरकारों को भी धमकी भरा आदेश जारी किया कि अगर कोई राज्य सरकार केन्द्र द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य पर अपनी तरफ से बोनस तय करती है तो उस फसल की सरकारी खरीद पर रोक लगा दी जायेगी।

खेती का लागत खर्च कम करने की तो बात ही क्या, मोदी सरकार नें बैंक खाते में नगद सबसिडी का झाँसा देकर वास्तव में खाद, बीज इत्यादि पर सबसिडी लगभग खत्म कर दिया, बिजली बिल और डीजल काफी महँगा कर दिया और विदेशी बीज कम्पनियों के निरबंसी बीटी बीज पर लगी रोक हटा ली। कर्ज माफी के लिए इतनी पेंचीदा शर्तें रख दी कि दरअसल वह मजाक बन कर रह गया, जब किसी के एक रुपये, तो किसी के सात रुपये कर्ज माफी के कागज जारी हुए। जिन किसानों ने कर्ज माफी की उम्मीद में किस्त जमा नहीं किये, उनको भारी ब्याज चुकाना पड़ा। ऐसी ही धोखाधड़ी फसल बीमा के नाम पर की गयी, जिससे किसानों को राहत देने की जगह उनसे बीमा रकम वसूलकर देशी-विदेशी बीमा कम्पनियाँ की तिजोरी भरने का काम किया गया।

किसानों को जमीन से बेदखल करने के लिए भाजपा सरकार ने कठोर भूमि अधिग्रहण अधिनियम लागू किया, ताकि कार्पोरेट घरानों के मुनाफे और प्रोपर्टी डीलरों की सट्टेबाजी को बढ़ावा दिया जा सके। पहले के कानूनों में जमीन के मालिकों से पूर्वअनुमति, सामाजिक परिणाम और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव का मूल्यांकन जैसे प्रावधान थे, जिनको नये कानून में निरर्थक बना दिया गया। एक्सप्रेस हाइवे के दोनों तरफ एक किलोमीटर तक की जमीन अधिग्रहण को वैध बना दिया गया। एक अनुमान के मुताबिक 6 राज्यों से गुजरनेवाले दिल्ली-मुंबई औद्योगिक कोरिडोर के लिए लगभग 7 लाख वर्ग किलोमीटर, यानी देश के कृषि योग्य जमीन का 38 प्रतिशत रकबा अधिग्रहित किया जा सकता है।

मोदी सरकार ने सत्ता में आते ही एक और बड़ा हमला ग्रामीण मजदूरों और खेती के साथ-साथ मजदूरी करके परिवार का खर्च चलानेवाले गरीब किसानों पर किया, जब उसने महात्मा गाँधी ग्रामीण रोजगार कानून (मनारेगा) में भारी बजट कटौती की। साथ ही जुलाई 2014 में राज्य सरकारों को निर्देश दिया कि वे मनरेगा को सिर्फ 2500 प्रखंडों तक सीमित करें। आज इस कार्यक्रम के तहत मिलनेवाला औसत सालाना रोजगार सिर्फ 36 दिन है।

इन तमाम किसान विरोधी नीतियों का नतीजा यह हुआ कि मोदी सरकार के दो वर्षों के शासन में खेती की विकास दर 3.7 प्रतिशत से घटकर 1.1 प्रतिशत रह गयी। इसी दौरान किसानों के प्रति परिवार सालाना आमदनी में भारी कमी आयी, जबकि शिक्षा, चिकित्सा के निजीकरण और कमरतोड़ महँगाई ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। आत्महत्या से छुटकारा दिलाने का वादा करनेवाली सरकार के पहले 6 महीने के शासन काल में ही किसानों की आत्महत्या में देशभर में 26 प्रतिशत और भाजपा शासित महाराष्ट्र में 40 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई।

निश्चय ही, भाजपा सरकार के सात साल के शासन कल में किसानों की हालत बद से बदतर होती गयी। और अब तीन कृषि कानून, जो नवउदारवादी नीतियों के तहत खेती-किसानी पर होनेवाले अब तक के हमलों में सबसे घातक और विनाशकारी है। 1991 से अब तक जितने बदलाव टुकड़े-टुकड़े में हुए, उन सबको मोदी सरकार ने इन कानूनों के जरिये अन्तिम परिणति तक पहुँचा दिया। ये कानून न केवल किसानों की बड़ी आबादी को तबाह करने वाले हैं, बल्कि खाद्य सुरक्षा तंत्र के पूरे ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करके देश को दाने-दाने के लिए तरसाने वाले साबित होंगे।

आखिर में

संयुक्त किसान मोर्चे द्वारा तीन खेती कानून के खिलाफ चलाया जा रहा अभूतपूर्व आन्दोलन सरकार की साजिशों और दमन-चक्र का मुकाबला करते हुए रोज नयी-नयी ऊँचाइयाँ हासिल करता जा रहा है। भारत में खेती-किसानी की समस्या और किसानों के शोषण-उत्पीड़न की कहानी जितनी पुरानी है, किसान आन्दोलन का इतिहास भी उतना ही पुराना है। अंग्रेजों के आने से पहले, प्राचीन काल और मध्य काल में राजे-रजवाड़ों-नवाबों के खिलाफ किसानों ने अनेक बगावतें कीं। अंग्रेजों की गुलामी के दौर में भी किसान आन्दोलनों का अटूट सिलसिला जारी रहा। इस वीरतापूर्ण किसान आन्दोलन के सिलसिले की असंख्य कड़ियों में से प्रमुख हैं-- बिरसा मुण्डा और चोट्टी मुण्डा की बगावत, त्रिपुरा के किसानों और आदिवासियों की बगावत, बिहार के बक्सर की लड़ाई, बाबा राम सिंह के नेतृत्व में कूका विद्रोह, अजीत सिंह के नेतृत्व में पगड़ी सम्हाल जट्टा आन्दोलन, केरल का पुनाप्रा वायलार आन्दोलन, बंगाल का तेभागा आन्दोलन, आसाम का सुरमा घाटी आन्दोलन, मालाबार किसान आन्दोलन, आंध्रप्रदेश का तेलंगाना आन्दोलन....।

आजादी के बाद भी किसान आन्दोलन का यह सिलसिला जारी रहा, चाहे भूमि सुधार और जमीन के मालिकाने की लड़ाई हो, खाद, बीज, पानी-बिजली, की महँगाई के खिलाफ या फसलों की उचित कीमत पर खरीद के मुद्दे पर संघर्ष। 1991 में नयी आर्थिक नीति लागू होने तथा विश्व बैंक, मुद्रा कोष और डब्ल्यूटीओ के साथ साँठ-गाँठ करके खेती-किसानी के ऊपर किये गये हमलों के खिलाफ भी देश के विभिन्न इलाकों में किसानों ने लगातार आन्दोलन किये, जैसे-- सबसिडी में कटौती, फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में कमी और खरीद में धाँधली तथा निरवंशी बीजों (टर्मिनेटर सीड्स) के खिलाफ आन्दोलन, सूखा और बाढ़ से फसलों की तबाही के बदले मुआवजे की माँग, विकास के नाम पर जबरन जमीन अधिग्रहण के खिलाफ संघर्ष, बड़े और विनाशकारी बाँध विरोधी आन्दोलन, नाभिकीय प्लांट सहित पर्यावरण का विनाश करनेवाली तमाम परियोजनाओं के खिलाफ संघर्ष, इत्यादि। लेकिन यह भी सही है कि इनमें से कुछ को छोड़कर ज्यादातर आन्दोलन स्थानीय, तात्कालिक और असंगठित होने के चलते सफलता की मंजिल तक नहीं पहुँच पाये।

मौजूदा किसान आन्दोलन इस मायने में अभूतपूर्व है कि यह किसी तात्कालिक लाभ की माँग या किसानों के किसी एक हिस्से की माँग या किसी एक इलाके की समस्या को लेकर नहीं, बल्कि खेती को देशी-विदेशी कॉर्पोरेट के

अधीन किये जाने की नीति के खिलाफ है, जो देश के हर इलाके के किसानों और छोटी-बड़ी हर तरह की जोत के मालिक किसानों को अपनी गिरफ्त में लेने वाली है। उन मजदूरों के खिलाफ भी है जो अपने उपभोग के सभी सामान महँगे दामों पर बाजार से खरीदते हैं। यहाँ तक कि जिन बड़े फार्मरों और निर्यात के लिए फसलें उगानेवालों को विश्व बाजार में प्रतियोगिता कर के मालामाल होने का भ्रम है, उनको लातिन अमरीकी देशों के किसानों की तबाही से सबक लेना बेहतर होगा। यही वजह है कि इस आन्दोलन को देशव्यापी समर्थन और सहयोग मिल रहा है।

जून 2020 के बाद से ही, दस महीनों से लगातार धैर्यपूर्वक संघर्षरत विभिन्न किसान संगठनों के नेताओं ने आन्दोलन के अलग-अलग पड़ावों पर बेहद सूझ-बूझ से काम लिया है और संयुक्त मोर्चे ने अपनी एकजुटता कायम रखी है। आन्दोलन को तोड़ने के लिए सरकार और उसके पिछलग्गुओं की तमाम षड्यंत्रकारी कार्रवाइयों, हमलों और दुष्प्रचारों का मुकाबला करते हुए, मौसम की मार सहते हुए बुरी से बुरी परिस्थितियों में भी अपनी जत्थेबन्दी को मजबूती से टिकाये रखते हुए, आन्दोलन के दौरान अपने 300 से भी अधिक जुझारू साथियों के बलिदान से अविचल रहते हुए, अपनी बात को आसान और दिलचस्प लहजे में जन-जन तक पहुँचाते हुए, जनता के अलग-अलग तबकों के संगठनों, व्यक्तियों और जनसमूहों तथा जाने-माने साहित्यकारों, पत्रकारों, गायकों, संस्कृतिकर्मियों बुद्धिजीवियों और कृषि वैज्ञानिकों का सहयोग और समर्थन हासिल करते हुए किसान मोर्चा के नेताओं ने जिस सूझ-बूझ, हिम्मत और हिकमत का परिचय दिया है, वह अद्‌भुत और अभूतपूर्व है। यही इस आन्दोलन की असली ताकत है और एक न्यायपूर्ण, समतामूलक समाज का सपना देखने और उस काम में लगे तमाम लोगों के लिए उम्मीद की किरण है।

आज किसानों का मुकाबला उस वैश्विक पूँजी के साथ है जो 1990 के बाद, बदली हुई परिस्थितियों में दुनिया की सारी प्राकृतिक सम्पदा को, मानव श्रम और मानव संसाधन को अपने मुनाफे का जरिया बनाने पर आमादा है। पिछले तीस वर्षों के दौरान दुनियाभर में पूँजी का संकट दिनोंदिन लाइलाज होता जा रहा है, जिससे बचने के लिए पूँजीवादी दार्शनिक, योजनाकार, अर्थशास्त्री, नौकरशाह और नेता दिन रात हाथ-पाँव पटक रहे हैं। पूँजी के वैश्वीकरण और नवउदारवादी नीतियों का विनाशकारी ताण्डव जारी है, जिसने दुनिया की भारी आबादी का जीवन नरक से भी बदतर बना दिया है। भुखमरी, बेरोजगारी, महँगाई, बीमारी, अकाल मौत, अपराध, दंगे-फसाद, अलगाव, सामाजिक-सांस्कृतिक-नैतिक पतन,

पर्यावरण की तबाही, आज अपने चरम पर है। इसके जवाब में आज पूरी दुनिया के मेहनतकशों के आन्दोलन भी नये रूपों में उठ खड़े हो रहे हैं।

किसान आन्दोलन की अब तक की उपलब्धियाँ पहले के किसी भी आन्दोलन से बहुत आगे है। आन्दोलन का नये रूप में और व्यापक जनता के बीच खड़े होना ही इसकी जीत है। आज किसान और अन्य मेहनतकश वर्ग हताश-निराशा से बाहर निकलकर और आत्महत्या का रास्ता छोड़कर जुझारू संघर्ष की राह पर आ रहे हैं। इस आन्दोलन ने जनता के सही सवाल को कार्य-सूची पर ला दिया है।

भगत सिंह ने कहा था युद्ध जारी है-- "हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति हों या अंग्रेजी शासक या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी रखी हुई है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो, तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

किसान और आत्महत्या

उन्हें धर्मगुरुओं ने बताया था प्रवचनों में
आत्महत्या करने वाला सीधे नर्क जाता है
तब भी उन्होंने आत्महत्या की
क्या नर्क से भी बदतर हो गयी थी उनकी खेती?
वे क्यों करते आत्महत्या
जीवन उनके लिए उसी तरह काम्य था
जिस तरह मुमुक्षुओं के लिए मोक्ष
लोकाचार उनमें सदानीरा नदियों की तरह
प्रवहमान थे
उन्हीं के हलों के फाल से संस्कृति की लकीरें
खिंची चली आयी थीं
उनका आत्म तो कपास की तरह उजार था
वे क्यों करते आत्महत्या
वे तो आत्मा को ही शरीर पर वसन की तरह
बरतते थे
वे कड़ें थे फुनगियाँ नहीं
अन्नदाता थे, बिचौलिये नहीं
उनके नंगे पैरों के तलुवों को धरती अपनी संरक्षित
ऊर्जा से थपथपाती थी
उनके खेतों के नाक-नक्श उनके बच्चों की तरह थे
वो पितरों का ऋण तारने के लिए
भाषा-भूगोल के प्रायद्वीप नाप डालते हैं
अपने ही ऋणों के दलदल में धँस गये
वो आरुणि के शरीर को ही मेंड़ बना लेते थे
मिट्टी का
जीवन-द्रव्य बचाने
स्वयं खेत हो गये
कितना आसान है हत्या को आत्महत्या कहना
और दुर्नीति को नीति।

-हरीश चन्द्र पांडे

सैलाब तिनकों से रुकते नहीं

तुम किसानों को सड़कों पे ले आये हो
अब ये सैलाब हैं
और सैलाब तिनकों से रुकते नहीं

ये जो सड़कों पे हैं
खुदकशी का चलन छोड़ कर आये हैं
बेड़ियाँ पाओं की तोड़ कर आये हैं
सोंधी खुशबू की सब ने कसम खायी है
और खेतों से वादा किया है के अब
जीत होगी तभी लौट कर आयेंगे

अब जो आ ही गये हैं तो यह भी सुनो
झूठे वादों से ये टलने वाले नहीं

तुम से पहले भी जाबिर कई आये थे
तुम से पहले भी शातिर कई आये थे
तुम से पहले भी ताजिर कई आये थे
तुम से पहले भी रहजन कई आये थे
जिन की कोशिश रही
सारे खेतों का कुन्दन, बिना दाम के
अपने आकाओं के नाम गिरवी रखें

उन की किस्मत में भी हार ही हार थी
और तुम्हारा मुकद्दर भी बस हार है

तुम जो गद्दी पे बैठे, खुदा बन गये
तुम ने सोचा के तुम आज भगवान हो
तुम को किस ने दिया था ये हक,
खून से सब की किस्मत लिखो,
और लिखते रहो

गर जमीं पर खुदा है, कहीं भी कोई
तो वो दहकान है,
है वही देवता, वो ही भगवान है
और वही देवता,
अपने खेतों के
मन्दिर की दहलीज को छोड़ कर
आज सड़कों पे है

सर-ब-कफ, अपने हाथों में परचम लिए
सारी तहजीब-ए-इंसान का वारिस है जो
आज सड़कों पे है
हाकिमों जान लो। तानाशाहों सुनो
अपनी किस्मत लिखेगा वो सड़कों पे अब
काले कानून का जो कफन लाये हो
धज्जियाँ उस की बिखरी हैं चारों तरफ
इन्हीं टुकड़ों को रंग कर धनक रंग में
आने वाले जमाने का इतिहास भी
शाहराहों पे ही अब लिखा जाएगा।

तुम किसानों को सड़कों पे ले आये हो
अब ये सैलाब हैं
और सैलाब तिनकों से रुकते नहीं

–गौहर रजा

सवाल यह है कि क्या भारत सरकार डब्ल्यूटीओ में शामिल रहते हुए और उसके नियमों का उल्लंघन किये बिना अपने देश में वैधानिक रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारन्टी कर सकती है? क्या अपने देश के खाद्य सुरक्षा कानून का पालन करते हुए अनाज का सरकारी भण्डारण और सस्ते गल्ले की दुकानों पर उसकी आपूर्ति कर सकती है? अगर नहीं, तो क्या देश के 80 प्रतिशत छोटी जोत वाले किसानों की तबाही और बहुसंख्य गरीब जनता को भुखमरी और कुपोषण से बचाना सम्भव है?

आज किसानों का मुकाबला उस वैश्विक पूँजी के साथ है जो 1990 के बाद, बदली हुई परिस्थितियों में दुनिया की सारी प्राकृतिक सम्पदा को, मानव श्रम और मानव संसाधन को अपने मुनाफे का जरिया बनाने पर आमादा है। पिछले तीस वर्षों के दौरान दुनियाभर में पूँजी का संकट दिनोंदिन लाइलाज होता जा रहा है, जिससे बचने के लिए पूँजीवादी दार्शनिक, योजनाकार, अर्थशास्त्री, नौकरशाह और नेता दिन रात हाथ-पाँव पटक रहे हैं। पूँजी के वैश्वीकरण और नवउदारवादी नीतियों का विनाशकारी ताण्डव जारी है, जिसने दुनिया की भारी आबादी का जीवन नरक से भी बदतर बना दिया है। भुखमरी, बेरोजगारी, महँगाई, बीमारी, अकाल मौत, अपराध, दंगे-फसाद, अलगाव, सामाजिक-सांस्कृतिक-नैतिक पतन, पर्यावरण की तबाही, आज अपने चरम पर है। इसके जवाब में आज पूरी दुनिया के मेहनतकशों के आन्दोलन भी नये रूपों में उठ खड़े हो रहे हैं।

– इसी पुस्तिका से

सहयोग राशि : 15 रुपये